P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-4* December- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में नारी–पुरूष संघर्ष की व्यथा–कथा

सुमन कुमार
पूर्व शोधार्थी,
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
सिदो–कान्हु मुर्मू
विश्वविद्यालय,
दुमका, झारखण्ड

सारांश

मध्य–युग में भोग्य की वस्तु समझी जाने वाली नारी की दशा स्वतंत्रता–प्राप्ति के इतने वर्षो के बाद भी बहुत अच्छी स्थिति में नहीं कही जा सकती है। जब हम 'रेणु' के उपन्यासों के नारी–पुरूष संघर्षों का विश्लेषण करते हैं तो उपर्युक्त सभी बातों की झलक हमें किसी–न–किसी रूप में मिलती है। कहीं वह घर की चहारदीवारी को तोड़ती नजर आती हैं तो कहीं असहाय, तो कहीं वह समाज–सेविका एवं सेवा के भाव से ओत–प्रोत है। हर नारी के चरित्र की अपनी विशेषता है, अपनी मौलिकता है, अपना अस्तित्व है और अपनी वैयक्तिकता है साथही उनके चरित्रों का मूल स्वर है–गहरा ऊँचा और उदात्त प्रेम। कुछ को छोड़कर नारियाँ इस रूप में निश्चय ही विशिष्ट और सराहनीय हैं। इन्होंने अपने नायक के जीवन की शुष्क, अस्त–व्यस्त अथवा बिखरी राहों को संवारा है–नदी की तरह पाटा है और संभवतः कोई 'परती' धरती नहीं छोड़ी है। इसमें पुरूष के पौरूष का श्रेय–प्रेय तो है ही पर नारियाँ के धैर्य एवं साहस का भी श्रेय उतना ही है।

मुख्य शब्द : गौरवमण्डित, वैदिक वाड्मय, सौम्यता, शालीनता, भोग्या, पर्दा–प्रथा, उन्मुक्ता, उच्छृंखलता, देवदासी प्रथा, सोशलिष्ट, संवेदनशील, उपजीव्य, सहनशीलता।

प्रस्तावना

वेदों, पुराणों, ब्राह्मणों जैसे ग्रंथों तथा कवियों द्वारा सम्मानित अनेकानेक अलंकारों से सुसज्जित भद्रा, रोद्रा, नित्या, गौरी, धात्री, कृष्णा, देवी आदि नामों और रूपों से सम्पूर्ण दुर्गा सप्तशती में गौरवमण्डित यह नारी देवताओं द्वारा पूजनीय मानी गई है। प्रकृति के प्रत्येक अंश में विद्यमान कहीं शक्ति, कहीं चेतना, कहीं लज्जा, कही प्रतिष्ठा, कहीं निंदा तथा कहीं श्रद्धा आदि अनेकानेक नामों से देवी स्वरूपा नारी तुल्य और सुसज्जित रही है। मनु–स्मृति के अनुसार अपना स्वर्ग नारी के अधीन मानने वाला हमारा पुरूष प्रधान समाज एवं साहित्य नारी की प्रसन्नता में ही सबकी प्रसन्नता और नारी के दुःख से सम्पूर्ण परिवार के दुःखी होने की धारणा आज भी है। 'मनु' ने संसार में नारी के मान–सम्मान करने की बात कही है।

भारतीय वैदिक वाड्मय में नारी की छवि अनन्तकाल से ही अपराजय, सबला, निर्मला, सती, व्यवहार कुशलता, समयानुकूल अपनी स्थिति और शक्ति का परिचय देने वाली विवेकशीला विदुषी की रही है। सत्, त्रेता, द्वापर आदि सभी युगों में नारी पुरूष को बल देती आई है। वह उसकी शक्ति का स्त्रोत रही है। नारी की उसी शक्ति के आधार पर यह कहना गलत नहीं होगा कि 'शक्ति को कोई सीमा में आबद्ध नहीं कर सकता है, शक्ति तो स्वतः प्रकट हो जाती है 'बहती हुई हवा की तरह, फूल की खुशबू की तरह, शक्ति को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता हैं।' नारी के स्वाभाविक गुण, दया, परोपकार, सहनशीलता, धैर्य, साहस पराक्रम आदि ने उसकी सीमाएँ नष्ट कर दी और चहारदीवारी से बाहर उसने कई अद्भुत एवं अविस्मरणीय कार्य किये हैं।

नारी भारतीय समाज, परिवार में प्रायः प्रारम्भ से ही अपनी त्याग–तपस्या, सहनशीलता और अपनी चारित्रिक शक्तियों के कारण पूजनीय रही है। तभी तो भारतीय परिवेश में 'दिनकर' का यह कथन अति चर्चित है कि–

कुसुम कामिनी दोनों सुन्दर होते हैं,
तन की सुन्दरता से।
तव भी नारियाँ श्रेष्ठ हैं,
कहीं कान्त कुसुमों से।

वस्तुतः नारी सवाक् सुमन है। वह, माँ, पत्नी, बेटी, बहन, वधू जैसे विभिन्न रूपों में हमारे गृहस्थ जीवन में रस का संचार करती है। समाज के उत्कर्ष में उनकी भागीदारी रहती है। वह शक्ति का स्त्रोत रही है। वही नारी जो कभी शील, सौन्दर्य, सौम्यता और शालीनता की मूर्ति थी उसे ही पुरूष समाज ने गली, मुहल्ला, चौराहों और चौपालों में चर्चा का केन्द्र बना दिया है।

यह सर्वविदित तथ्य है कि समाज में नारी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बिना नारी के आगे कुछ भी नहीं चल सकता–न घर, न परिवार, न समाज। आज तो नारी विकास के दौर में इतनी आगे आ चुकी हैं कि आश्चर्य होता है कि क्या ये वही नारी हैं जो कल–तक तथाकथित सीमित दायरे में रहीं हैं ?

हर बात या वस्तु के दो पहलू होते हैं–पक्ष और विपक्ष। मैं सदा से पक्ष का समर्थन करता हूँ। अतः मैं यह कभी नहीं समझता कि महिलाएँ पुरूषों से किसी प्रकार हीन हैं। नारी के अनेक रूप हैं और इस बात को लगभग सभी जानते हैं। हमारा समाज उसे अलग–अलग रूपों में देखता है। माँ, पत्नी, बहन इन सभी रूपों में वह जनकल्याण करती है। माँ बनकर वह अपने बच्चे को अपनी ममता के आँचल में इस तरह पालती है कि वह बड़ा होकर अपने पैरों पर खड़ा हो सके। बहन बनकर वह अपने भाई को इतना प्यार देती है कि वह उसकी रक्षा करने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहती है। नारी की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए मनु महाराज ने भी कहा है :–

'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूजयन्ते असफलास्तत्र सर्वाः क्रिया।।'[1]

अर्थात् हमारे धर्म और पूर्वजों के विचार में जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। यहाँ पूजा से अर्थ सम्मान और मर्यादा से है, उन्हें अधिकार देकर उनकी रक्षा करने से है।

वैदिक युग में जहाँ नारी को देवी गृहलक्ष्मी एवं गृहदेवी आदि नामों से संबोधित किया गया, वहीं मध्ययुग में उसकी स्थिति दयनीय हो गयी। प्राचीन काल से चली आ रही इस प्रकार के सम्बोधन या विशेषण जोड़कर उसे या तो हमने पूजा की चीज बना दिया या फिर अबला के रूप में मात्र भोग्या या चल सम्पत्ति समझ लिया। उसका एक रूप शक्ति का भी है, इसका स्मरण औपचारिकतावश कभी–कभी ही किया करते हैं, जबकि आवश्यकता इसी बात की सर्वाधिक है। इसके साथ ही नारी को समाज की घृणित विचारधारा का कोपभाजन भी होना पड़ा है। पर्दा–प्रथा आरम्भ होने के साथ ही स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से भी वंचित होना पड़ा। समाज में प्रचलित कुछ कुरीतियाँ नारियों को इतना दीन–हीन बना दिया कि वे अपने अस्तित्व को ही भूल गई। इसलिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने नारी के इस दशा का वर्णन निम्न पंक्तियों में किया है :–

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।'

जबकी नारी श्रद्धा–विश्वास की पात्री है। 'प्रसाद' जी ने भी लिखा है–

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।''[2]

यह युग का प्रभाव है कि आज का युग अत्यन्त आधुनिक हो चुका है, यानि इसे मोबाइल –युग कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसी के विविध रूप हैं और समय–समाज के आलोक में उनमें भी बदलाव हुआ है। कथाकार 'रेणु' के उपन्यासों में भी नारी के अनेक चरित्र हैं, जो अपने–आप में बहुत कुछ कहती हैं, जिनका योगदान कहीं भी किसी भी मायने में कम नहीं है।

अत्यधिक स्वतंत्रता एवं उन्मुक्तता भी विनाश का कारण बनती है। नारी भले ही अपनी स्वतन्त्रता का, उन्मुक्तता का ढिढोरा पिटती रहे मगर चाकू खरबूजे पर पड़े या खरबूजा चाकू पर, कटता तो है–खरबूजा ही। विनाश की ओर तो नारी ही जाती है, पतन तो उसका ही होता है। नारी भले ही यह मानती हो कि उसके पास अस्मिता एक ऐसा हथियार है जो पुरूषों को परास्त कर सकता है। वह यह भी जानती है कि देर सवेर नारी की दैहिक शुचिता को टूटना ही है। दैहिक उच्छृंखलता मानसिक संतोष नहीं दे सकती, उससे तो अंततः आत्मग्लानि, आत्मपीड़ा ही पहुँचती है। यह वृत्ति समाज की हीनतम स्थिति का सूचक है। स्त्रियों की जरा–सी भूल पर उसे पुरूष के क्रोध का सामना करना पड़ता है। श्रीमती लछमी मेनन ने अपने लेख में कई कारणों पर प्रकाश डाला है, जैसे–देवदासी प्रथा, भूख और दरिद्रता अर्थात् आर्थिक स्थिति, बाल–विधवाएँ, समाज द्वारा निष्कासित अथवा समाज के दंड का कोपभाजन स्त्रियों का व्यवसाय करने वाले रक्षा–गृहों, विधवाश्रमों अथवा महिलाश्रमों के नाम पर व्यभिचार का समावेश, लड़कियों के प्रति भारतीय दृष्टिकोण, शिक्षा का अभाव–अत्यधिक धन की लालसा इत्यादि ये सब ऐसे कारण है, जो नारी को पुरूष संघर्ष की ओर धकेलते हैं।

नारी को अबला समझ पुरूष सदैव उस पर हावी होने का प्रयास करता है। कहीं–मानसिक तो कहीं शारीरिक रूप से उसका शोषण सदियों से होता आ रहा है और इस बात को 'रेणु' जी ने अपने उपन्यासों में बखूबी उतारा है। 'परती : परिकथा' की एक शरणार्थी नारी–इरावती का संघर्ष 'रेणु' जी ने यथार्थपूर्वक दिखलाया है। इरावती ने जीवन में इतना कुछ भोगा है कि वह इसे अपने जीवन को नियति समझ बैठी है और वह इसे स्वीकार करते हुए आत्म–संघर्ष करना सीख गई है। उदाहरण–स्वरूप प्रसंग चित्रित है– ''.....छोटा नागपुर के पहाड़ी अंचल की पथरीली धरती पर गड़गडाती हुई भागी जा रही है–कालका मेल। प्रथम श्रेणी के बर्थ पर लेटी हुई है, इरावती। दूसरे बर्थ पर करवट ले रहे हैं, उसके नेता भैया। नेता भैया अचानक उसके पास आकर बैठ गये–उससे जबरदस्ती करनी शुरू कर दी। इरावती मुस्कराई–यह क्या हो रहा है। नेता ने उसे छोड़ा नहीं, बल्कि अपनी सारी ताकत 'इरा' पर लगा दी। 'इरा' चीख पड़ी।.....पर्श पर लुढ़के नेता भैया को उसने उठाया, बत्ती जलाई और नेता के कपड़े में लगी धूल को झाड़ने लगी। ''देखिए तो, कितनी धूल लग गयी। मुझे

दुःख है कि मैं तुम्हारे काम नहीं आ सकी। असल में प्यार करने की ताकत मुझमें नहीं। दिन–रात मैं इसी चेष्टा में रहती हूँ कि मेरा प्यार फिर पनपे। किन्तु, कहाँ जन्म लेता है मेरे उजाड़ मन में, नेता भैया लजाते क्यों हो ? तुमने कोई अधर्म नहीं किया है। हजारों औरतों पर बलात्कार होते देखा है, मैंने। दिन–दहाड़े सड़कों पर। दर्जनों बार बलात्कार की पीड़ा से छटपटाई हूँ। चीखती रही हूँ, गला फाड़कर। मैंने उस समय की चीखें सुनी है, जबकि लोहे के लाल गर्म सलाखें से .....।''[3] इस तरह का संघर्ष इरावती ने जीवन में कई बार देखा है और उसका प्रभाव यह हुआ कि पुरूषों पर से उसका विश्वास उठ गया है।

इसी प्रकार गाँव वाले लुत्तो के भड़काने पर जब जितेन्द्र मिश्र के खिलाफ आन्दोलन छेड़ते हैं तो उनके सामने इरावती पड़ती है, जो जितेन्द्र की हवेली की ओर जा रही थी। अचानक लोग उस पर हमला करते हैं तब इरावती भागकर सामबत्ती पीसी के घर में घुस जाती है। तब उसकी रक्षा करते हुए सामबत्ती पीसी हाथ में मूसल–लेकर दरवाजे पर पहरा देती है– ''माथा थुर देंगे, इधर यदि कोई आया।'' यहाँ पुरूषों के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए सामबत्ती पीसी जैसी नारी ही इराबती का साथ दे सकती है। जिसका परिणाम यह होता है कि उसे मानव की सहज मानवीयता पर से विश्वास उठ जाता है। हाँलाकि इस नारी में कुछ नयापन देखने एवं करने की तमन्ना है।

इसी प्रकार 'मैला आचँल' में कुर्त्ता पाजामा पहनने वाली मास्टरनी मंगला देवी को भी अनेक स्थलों पर पुरूषों के साथ संघर्ष करते दिखाया गया है। वह बिना किसी की सहायता के स्वयं पुरूषों से संघर्ष करती है। एक प्रसंग चित्रित है–चरखा–सेंटर की मास्टरनी और मास्टर जी लोगों में झगड़ा हो गया है। चरखा मास्टर टुनटुन जी को मंगलादेवी का सोशलिस्ट आफिस में रहना बड़ा बुरा लगता है। जब तक बीमार थी तो वही थी। अब अच्छी हो गयी तो वहाँ रहने की क्या आवश्यकता ? ''जब बीमार पड़ी तो झाँकी मारकर भी देखने के लिए नहीं आते थे और आज नैतिकता पर प्रवचन दे रहे हैं। मंगलादेवी इन लोगों को खूब पहचानती हैं। व्यवस्थापिका जी को लिखेंगे तो लिखें। क्या करेंगी व्यवस्थापिका जी ? ऐसी धमकियों से मंगला देवी नहीं डरती। टुनटुन जी जो चाहते हैं, सो वह जानती है। पटना से आते समय समस्तीपुर में उसे लेकर उतर गये, बोले गाड़ी बदलनी होगी। बाद में मालूम हुआ कि वही गाड़ी सीधे कटिहार जाती है। दूसरी गाड़ी फिर सुबह आठ बजे। रात को बारह बजे धर्मशाला में ले गए। टुनटुन जी का परिचय और कहना नहीं होगा।''[4]

'जुलूस' उपन्यास की नायिका पवित्रा भी सांप्रदायिक हिंसा का शिकार होकर बांग्लादेश से भारत आई और यहाँ उसे अपनी सुंदरता और असहायता के कारण पग–पग पर पुरूषों के साथ संघर्ष करना पड़ा। पवित्रा के सौंदर्य को देखकर अधिकारी भी उस पर आसक्त हो जाते हैं और उसे अपनी हवस का शिकार बनाना चाहते हैं, किन्तु पवित्रा अपने आत्म–संघर्ष द्वारा अपने–आप को बचाने में सफल होती है। कभी–कभी तो अपने साथी शरणार्थी लोगों से भी उसे संघर्ष कर अपनी पवित्रा को सिद्ध करना पड़ा। अन्ततः पवित्रा अपने निःशेष जीवन को लोक–संस्कृति मूलक समाज के गठन के लिए समर्पित कर देती है।

अपने बंगाल के लोकजीवन से सम्बद्ध पवित्रा पूरे हिन्दुस्तान से जुड़ने की कोशिश करती है। बंगकन्या पवित्रा के विचार अथवा चिंतन में विवेकानन्द स्पन्दित है। वह अन्त में अनुभव करती है– ''मैं अकेली नहीं। मैं निस्संग नहीं। मैं कही निर्जन नहीं। मैं एक विशाल परिवार की बेटी हूँ। इन भारतीय स्वजनों के बीच पारस्परिक सहानुभूति और सहयोगिता को फिर से पनपाऊगी मैं। अपने गाँव समाज में–लोगों के वीरान हृदय में– आनन्द मुखर स्वर फिर से भरना होगा..... खोयी हुई चीजों का उद्धार करना होगा। अपरिचय, अजनबीपन, उदासीनता, अकेलापन, आत्मकेन्द्रिकता, विच्छिन्नता को दूर करके भूले–भटके लोगों को, अपने लोगों को पास लौटाकर लाना होगा। मैं अपनी सत्ता को इस समाज में विलीन कर रही हूँ। लोक संस्कृतिमूलक समाज के गठन के लिए आमि आमा के उत्सर्ग कोलीम।''[5]

'दीर्घतपा' अथवा 'कलंकमुक्ति' उपन्यास में होस्टल में ट्रेनिंग लेने आई नावालिक विभावती और गौरी की इज्जत होस्टल की सेक्रेटरी मिसेस आनंद के दोस्त लूट लेते हैं। वे संघर्ष करती हैं, पर सफलता नहीं मिलने पर गौरी आत्महत्या कर लेती है और विभावती की मृत्यु गंभीर रूप से बीमार पड़कर हो जाती है। इसी उपन्यास की नायिका बेला गुप्त ने अपने जीवन में बहुत आत्म–संघर्ष किया है और अंत में वह होस्टल की मैनेजर बनकर आई है। उसे क्रांति के नाम पर बाँके नामक व्यक्ति ने चंगुल में फंसाया और उसके जीवन को तबाह कर दिया। 'रेणु' जी ने बेला के कड़े संघर्ष का एक चलचित्र–सा अंकित किया है– ''तर्क मत करो। बाँके पुरूष है। तुम स्त्री हो, उसके जब जी में आवेगा–तुम्हारा उपयोग करेगा। उसका चमड़ें का पोर्टफोलियों बैग है–उसे वह जब चाहता है खेलता है, बंद करता है। चमड़ें का थैला तर्क नहीं करता। बेला क्यों तर्क करती हो। बाँके का हाथ बेकार बैठा नहीं रह सकता। आश्चर्य। जब उसको डर होता है किसी बात का–तब भी वह बेला को.....।[6]

उपर्युक्त नारी–पुरूष संघर्ष के माध्यम से 'रेणु' जी ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि पुरूष को मौका मिलना चाहिए, वह हमेशा नारी पर हावी होने का प्रयास करता है। यह तो नारी है, जो कहीं आत्म–संघर्ष द्वारा अपने को बचा लेती है तो कहीं समझौता, तो कहीं अपने–आप को बचा नहीं पाने के कारण, अपने जीवन को समाप्त कर लेना उचित समझती हैं। हर सभ्यता में नैतिकता का बोझ स्त्रियों को ही सबसे अधिक ढ़ोना होता है। उन्हें ही नैतिक मानदंडों पर खरा उतरना, विचलनों का दंड भोगना और संतानों को नैतिक परम्पराओं में दीक्षित करना होता है। बहुधा इन नैतिकताओं को धर्मिक स्वीकृति प्राप्त होती है। यह अलग बात है कि धर्म और नैतिकता दोनों पुरूषों के बनाये होते हैं। वे न केवल सामाजिक श्रेणीकरण वरन् लैंगिक श्रेणीकरण को संरक्षण देते हैं, बल्कि बढ़ावा भी देते हैं।

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-4* December- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

साहित्यावलोकन

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों पर किये गये विभिन्न शोधकार्यों में रागिनी (1993) के अनुसार नारी वैदिक काल से ही भोग–विलास की वस्तु के रूप में जानी जाती रही है। कमोवेश स्वरूप में परिवर्तन के साथ आज भी विद्यमान है। सुषमा पांडेय (2010) के अनुसार नारी वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक उनका स्थान श्रेष्ट रहा है। मनु–स्मृति में भी नारी पूजनीय मानी गयी है। सुनिता देवी (1998) ने अपने शोध के माध्यम से तात्कालीन समाजिक व्यवस्था पर कुठाराघाट किया है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' नामक महाकाव्य में नारियों को 'अबला' के रूप में चित्रित किया है। मदनलाल (2010) ने अपने शोध में रेणु के उपन्यास में नारी–पुरूष संघर्ष की व्यथा की मार्मिक छटा प्रस्तुत की है। जयशंकर प्रसाद ने महाकाव्य 'कामायनी' में लज्जा सर्ग के माध्यम से नारी को 'पीयूष श्रोत' कहा है। रामचंद हजारी (1984) ने अपने शोध में नारी–पुरूष संघर्ष को तात्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त समाजिक विसंगतियों की संज्ञा दी है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यास मैला ऑचल, परती : परिकथा, जुलूस आदि में समकालीन भारतीय समाज में व्याप्त वर्ग–संघर्ष, नारी–पुरूष संघर्ष की भावना कूट कूट कर भरी–परी है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. फणीश्वरनाथ 'रेणु' द्वारा रचित विभिन्न उपन्यासों में प्रस्तुत नारी पात्रों को पुरूष प्रधान समाज के विरूद्ध संघर्ष को रेखांकित करना।
2. नारी पात्रों के माध्यम से तात्कालीन भारतीय समाज में अस्मिता के वास्तविक स्वरुप का परिचय कराना।
3. समाज, देश की सर्वांगीण उन्नति हेतु नारियो के योगदान एवं उदान्त स्वरुप को रेखांकित करना।
4. समाज में व्याप्त कुरीतियों, अमानवीय रीतियों तथा नारी विषयक हीन पक्षों का मूल्यांकन करना।
5. आधुनिक भारतीय नारी के विद्रोही चरित्र का रुपाकंन करना।
6. अन्याय, शोषण के विरुद्ध नारियों के संघर्ष एवं प्राप्त फलाफल की विवेचना करना।

निष्कर्ष

'रेणु' जी के उपन्यासों में नारी–पुरूष संघर्ष के अध्ययन के उपरान्त हम पाते हैं कि पुरूष की सामाजिक प्रधानता के बावजूद 'नारी' उनके उपन्यासों का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है। 'नारी के बिना पुरूष की जीवन अधूरा है', 'नारी पुरूष की सम्पूर्णता है', 'नारी जीवन रूपी गाड़ी का एक पहिया है'–आदि पारम्परिक सिद्धान्त 'रेणु' की औपन्यासिक नारियों की महत्ता को कतई रेखांकित नहीं करते। तब भी नारी उल्लेखनीय है रेणु के लिए। इसका कारण यह है कि उन्होनें जिस देश–काल को अपने उपन्यास का उपजीव्य बनाया था–उसमें क्रमिक रूप से उन्होंने महसूस किया कि नारी सिर्फ पुरूष की सम्पत्ति नहीं है,, बल्कि नारियाँ अत्यन्त संवेदनशील यंत्र है जिन पर काल–संक्रमण के फलस्वरूप घटित समाज–परिवर्तन की हल्की–से हल्की धड़कन भी साफ सुना जा सकता है। इसलिए तो कामायनी में प्रसाद जी भी श्रद्धा के माध्यम से कहती है –

''तुमुल कोलाहल कलह में,
मैं हृदय की बात रे मन।''

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *महाराज मनु : मनुस्मृति, पुस्तक महल प्रकाशन, दिल्ली संस्करण –2012*
2. *प्रसाद जयशंकर : कामायनी, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, संस्करण–2001, पृष्ठ संख्या–34*
3. *'रेणु' फणीश्वरनाथ : परती परिकथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2009, पृष्ठ संख्या–230–231*
4. *'रेणु' फणीश्वरनाथ : मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2008, पृष्ठ संख्या–165–166*
5. *रेणु' फणीश्वरनाथ : जुलूस, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2004, पृष्ठ संख्या–135*
6. *'रेणु' फणीश्वरनाथ : दीर्घतपा अथवा कलंकमुक्ति, बिहार ग्रंथ कुटीर, पटना, संस्करण–1990, पृष्ठ संख्या–42*
7. *वशिष्ठ डॉ0 सरिता : हिन्दी कथा–साहित्य में नारी–विमर्श, परिषद् पत्रिका।*
8. *'दिनकर' रामधारी सिंह– उर्वशी।*